अमरु-शतककी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

डॉ० अजयमित्र शास्त्री

१. इस विषयमें दो मत नहीं हो सकते कि अमरुक[1] कविका अमरुक-शतक संस्कृतके शृङ्गारपरक गीतिकाव्योंमें बेजोड़ है। कालिदासोत्तर कालके गीतिकाव्योंके रचयिताओंमें अमरुकके श्लोक संस्कृत काव्य-शास्त्रीय ग्रन्थोंमें सबसे अधिक उद्धृत मिलते हैं। एक श्लोकके दायरेमें प्रेमके विविध भावों और परिस्थितियोंके आकर्षक चित्र प्रस्तुत करने वाले श्लोकोंके सङ्ग्रहके रूपमें संस्कृत साहित्यमें अमरुक शतकका उतना ही उच्च स्थान है जितना प्राकृत साहित्यमें हाल सातवाहनकी गाथासप्तशतीका। काव्यरसिकोंके बीच अमरुकको कितना अधिक आदर प्राप्त था यह स्पष्ट करनेके लिए आनन्दवर्धनका मत उद्धृत करना पर्याप्त होगा। ध्वन्यालोकमें आनन्दवर्धनने अमरुकका उल्लेख ऐसे कवियोंके उदाहरणके रूपमें किया है जिनके मुक्तक उतने ही रसपूर्ण होते हैं जितने कि प्रबन्धकाव्य। उन्होंने लिखा है कि अमरुक कविके शृङ्गाररसको प्रवाहित करने वाले मुक्तक वस्तुतः अपने आपमें प्रबन्ध हैं।[2] भरत टीकाकारने कहा है कि अमरुकका एक एक श्लोक सौ प्रबन्धोंके बराबर है।[3]

२. दुर्दैववश अनेक प्राचीन साहित्यकारोंकी भाँति अमरुकके जीवन और कालके विषयमें भी हमारी जानकारी नहींके बराबर है, और निश्चित जानकारीके अभावमें कविके जीवनके सम्बन्धमें अनेक किंवदन्तियां प्रचलित हो गयी हैं। उदाहरणार्थ शङ्करदिग्विजयमें माधवने एक किंवदन्तीका उल्लेख किया है जिसके अनुसार मण्डनमिश्रकी पत्नी भारतीके प्रेमविषयक प्रश्नोंका उत्तर देनेके लिए आवश्यक कामशास्त्र विषयक जानकरी प्राप्त करनेके उद्देश्यसे शङ्कराचार्य राजा अमरुके मृतशरीरमें प्रविष्ट हुए, उन्होंने अन्तःपुरकी सौ युवतियोंसे रति की और वात्स्यायन कामसूत्र तथा उसकी टीकाका अनुशीलन कर कामशास्त्रपर एक अनुपम ग्रन्थकी रचना की। इस किंवदन्तीके आधारपर परवर्तीकालमें यह विश्वास प्रचलित हुआ कि काश्मीरके राजा अमरुकके रूपमें प्रच्छन्न शङ्कराचार्य ही अमरुशतकके रचयिता थे। इस किंवदन्तीका उल्लेख अमरुशतक के टीकाकार रविचन्दने किया है।[4] यह किंवदन्ती अन्य महापुरुषोंके सम्बन्धमें प्रचलित असङ्ख्य अनर्गल एवम् निराधार विश्वासोंकी श्रेणीकी है। ऐतिहासिक दृष्टिसे इसका कुछ भी महत्त्व नहीं है।

३. अमरुक भारतके किस प्राप्तमें हुआ, यह भी ज्ञात नहीं है। श्री चिन्तामणि रामचन्द्र देवधरने अत्यन्त आधारहीन तर्कोंके बलपर यह सम्भावना व्यक्त की है कि अमरुक दाक्षिणात्य था। उन्होंने यहाँ तक

---

१. अमरु, अमरुक, अमर, अमरक, और अम्रक ये कविके नामके अन्य रूप हैं। द्रष्टव्य—चि० रा० देवधर (सम्पादक), वेमभूपालकी शृङ्गारदीपिका सहित अमरुशतक (पूना, १९५९), प्रस्तावना, पृ०९।

२. मुक्तकेषु प्रबन्धेष्विव रसबन्धाभिनिवेशिनः। यथा आमरुकस्य कवेर्मुक्तकाः शृङ्गाररसस्यन्दिनः प्रबन्धायमानाः प्रसिद्धा एव।

३. अमरुककवेरेकः श्लोकः प्रबन्धशतायते।

४. चि० रा० देवधर, पूर्वोक्त, प्रस्तावना, पृ० ११-१२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कल्पना की है कि अमरुक केवल दाक्षिणात्य ही नहीं अपितु चालुक्य राजधानी वातापि (आधुनिक बादामी)का निवासी था।[1] किन्तु उनकी यह धारणा समीचीन प्रतीत नहीं होती।

इसके विपरीत अमरुकके नामकी ध्वनि जो शङ्कुक जैसे नामोंसे मिलती जुलती है और इस तथ्यसे कि अमरुकका सनाम उल्लेख और उसके श्लोकोंको उद्धृत करने वाले प्राचीनतम काव्यशास्त्री कश्मीरी थे, ऐसा लगता है कि अमरुक भी कश्मीरी था। किन्तु निश्चित प्रमाणोंके अभावमें इस सम्बन्धमें कोई भी मत पूर्णतः प्रामाणिक नहीं माना जा सकता।

४. पीटर्सन द्वारा अमरुशतककी एक टीकासे उद्धृत एक श्लोकके अनुसार अमरुक जातिसे स्वर्णकार था।[2] यद्यपि यह असम्भव नहीं है तथापि इस विषयमें निश्चित रूपसे कुछ भी कहना कठिन है क्योंकि अमरुकके कई शताब्दियों पश्चात् हुए इस टीकाकारको कविके जीवन विषयक सत्य जानकारी थी या नहीं, यह जाननेका कोई साधन नहीं है।[3]

५. अमरुकने अपने शतकके प्रथम श्लोकमें अम्बिका और दूसरे श्लोकमें शम्भुकी वन्दना की है। अतः यह निर्विवाद रूपसे कहा जा सकता है कि वह शैव था।

६. अमरुकका सनाम उल्लेख सर्वप्रथम आनन्दवर्धन (ई० ८५०के आसपास)ने किया है।[4] उसके समयमें अमरुकके महान् यशको देखते हुए लगता है कि वह आनन्दवर्धनसे बहुत पहिले हुआ। इसके पूर्व वामन (ई०८००)ने बिना कवि और उसकी रचनाका उल्लेख किये अमरु-शतकसे तीन श्लोक उद्धृत किये हैं।[5] इससे यह सूचित होता है कि अमरुकका काल आठवीं शताब्दीके पूर्वार्धके पश्चात् नहीं रखा जा सकता। सम्भव है कि वह बहुत पहले रहा हो।

७. अमरुक शतक एकाधिक संस्करणोंमें उपलब्ध है। आर० साइमनने इस प्रश्नका विस्तृत अध्ययन कर अधोलिखित चार संस्करणोंका उल्लेख किया है जो एक दूसरेसे श्लोक सङ्ख्या और श्लोक क्रममें भिन्न हैं—

१. वेम भूपाल[6] और रामानन्दनाथकी टीका सहित दाक्षिणात्य संस्करण,

२. रविचन्द्र[7]की टीका सहित पूर्वी अथवा बंगाली संस्करण,

३. अर्जुनवर्मदेव[8] और कोक सम्भव[9]की टीका सहित पश्चिमी संस्करण, तथा

---

१. चि० रा० देवधर, अमरुशतक, मराठी अनुवाद, प्रस्तावना, पृ० ५।

२. विश्वप्रख्यातनाडिन्धमकुलतिलको विश्वकर्मा द्वितीयः।

३. अमरुक द्वारा विशिखा = स्वर्णकारोंकी गली (वेमभूपालका श्लोक क्र०८७) और सन्दंशक = संड़सी (अर्जुन वर्मदेवका श्लोक-७४)में श्री देवधर इस कथनकी पुष्टि पाते हैं।

४. द्रष्टव्य-पाद टिप्पणी—२।

५. काव्यालङ्कार सूत्रवृत्ति, ३-२-४; ४-३-१२; ५-२-८।

६. देवधर द्वारा सम्पादित, पूना, १९५९।

७. वैद्य वासुदेव शास्त्री द्वारा सम्पादित, बम्बई, वि० स० १९५०।

८. काव्यमाला, सङ्ख्या १८, दुर्गाप्रसाद व परब द्वारा सम्पादित्त, द्वितीय आवृत्ति, बम्बई, १९२९।

९. चि० रा० देवधर द्वारा सम्पादित, भाण्डारकर प्राच्य विद्या प्रतिष्ठानकी पत्रिका, खण्ड ३९, पृ० २२७-२६५) खण्ड ४०, पृ० १६-५५।

Jain Education International . For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४. रुद्रमदेव[1] और रामरुद्र इत्यादिकी टीका सहित एक विविध संस्करण ।[2]

इन संस्करणोंमें केवल ५१ श्लोक समान हैं । किन्तु, जैसा कि सुशील कुमार डे ने सुदृढ़ आधारोंपर प्रतिपादित किया है[3], यदि हम साइमनके चतुर्थ संस्करण, जो वस्तुतः विविध पाण्डुलिपियोंका विलक्षण समन्वय मात्र है, की ओर ध्यान न दें तो इन विविध संस्करणोंके समान श्लोकोंकी सङ्ख्या ७२ हो जाती है । देवधरने सुझाया है कि यदि रविचन्द्रके भ्रष्ट और त्रुटित पाठको छोड़ दिया जाय, जैसा कि उचित प्रतीत होता है, तो अर्जुनवर्मदेव, वेमभूपाल और रुद्रमदेवमें पाये जाने वाले समान श्लोकोंकी सङ्ख्या बढ़कर ८४ हो जाती है ।[4] यह प्रश्न बड़ा जटिल है और इस विषयका विस्तारसे विवेचन करना यहाँ हमारा प्रयोजन नहीं है । यहाँ इतना कहना पर्याप्त होगा कि कुछ स्पष्ट कारणोंसे[5] हमें बूलर,[6] एच० बेलर[7], कीथ[8] तथा देवधरका[9] यह मत अधिक तर्कसङ्गत प्रतीत होता है कि रसिक संजीवनी टीका सहित तथाकथित पश्चिमी संस्करण मूलपाठके सबसे अधिक निकट है ।

किन्तु मूलपाठके विषयमें निश्चित जानकारी न होनेके कारण प्रस्तुत लेखमें हमने अमरुशतकके समस्त संस्करणोंमें पाये जाने वाले श्लोकोंका उपयोग किया है । इस प्रयोजनके लिए अर्जुन वर्मदेवकी टीका सहित काव्यमाला आवृत्ति (edition)को हमने आधारभूत माना है । दक्षिणी संस्करणमें पाये जाने वाले अतिरिक्त श्लोक इसी आवृत्तिमें श्लोक सङ्ख्या १०३-११६के रूपमें और रुद्रमदेवके पाठमें उपलब्ध अतिरिक्त श्लोक क्र० ११७-१३०के रूपमें दिये गये हैं । केवल रविचन्द्रके बंगाली संस्करणमें प्राप्य श्लोक इसी आवृत्तिमें क्र० १३२-१३५, १३७-१३८में दिये गये हैं । इस प्रकार सब संस्करणोंको मिलाकर अमरुशतकमें १३६ श्लोक हैं जिनका उपयोग प्रस्तुत लेखमें किया गया है । इनके अतिरिक्त संस्कृत सुभाषित सङ्ग्रहोंमें अमरुकके नामसे कुछ और श्लोक भी दृष्टिगत होते हैं[10] । ये श्लोक अमरुशतकके किसी भी संस्करणमें नहीं पाये जाते । सुभाषित सङ्ग्रहोंमें यदाकदा एक ही कविकी रचनाएँ दूसरे कविके नामसे और एक ही रचना विभिन्न लेखकोंके नामसे दी हुई पायीं जाती है । अतः यह श्लोक वस्तुतः अमरुकके हैं या नहीं, यह निर्णय करना कठिन है और फलस्वरूप उनका उपयोग यहाँ नहीं किया गया है ।

---

१. सुशीलकुमार डे द्वारा सम्पादित, अवर हेरिटेज, ख० २, भाग २, १९५४ ।

२. आर० साइमन, डास अमरुशतक, कील, १८९३; जेड० डी० एम० जी०, ख० ४९ (१८९५), पृ० ५७७ इत्यादि ।

३. अवर हेरिटेज, ख०, २, भाग १, पृ० ९७५ ।

४. चि० रा० देवधर (सं०), वेमभूपाल रचित टीका सहित अमरुशतक, पृ०१२—२० ।

५. अर्जुनवर्मदेव प्रणीत रसिक संजीवनी अमरुशतककी प्राचीनतम टीका है । उसमें एक समीक्षकका विवेक था और उसने मूल और प्रक्षेपके बीच भेद करनेका प्रयत्न किया । उसका पाठ सुशीलकुमार डे द्वारा निर्धारित पाठसे बहुत समानता रखता है ।

६. जेड० डी० एम० जी०,खण्ड ४७ (१८९३), पृ०९४ ।

७. विन्टरनित्स, ए हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिटरेचर, खण्ड ३, भाग १, कलकत्ता, १९५९, पृ० ११०, टिप्पणी, ४ ।

८. ए हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर, ऑक्सफोर्ड, १९२०,पृ० १८३ ।

९. वेमभूपालकी टीका सहित अमरुशतक, प्रस्तावना, पृ० १२—२१ ।

१०. द्रष्टव्य-काव्यमाला आवृत्तिके श्लोक क्र० १३९-१६३ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८. अधिकांश संस्कृत काव्यों और नाटकोंकी भाँति अमरुशतक भी नागर संस्कृतिकी उपज है। अमरुक द्वारा चित्रित पुरुष और स्त्री नागरिक वातावरणमें साँस लेते हैं। वे नागरिक जीवनकी सुखसुविधाओंके अभ्यस्त हैं। उनके भावों और अभिव्यक्तियोंमें भी नागरिक परिष्कार दृष्टिगोचर होता है। किन्तु अमरुकके शतक तथा नागरिक संस्कृतिमें साँस लेनेवाली अन्य साहित्यिक कृतियोंमें एक मौलिक भेद है। जबकि अधिकांश संस्कृत काव्य और नाटक प्रमुखतः दरबारी संस्कृतिके प्रतीक हैं और घिसे पिटे जैसे लगते हैं, वहाँ अमरुशतक सामान्यजन द्वारा अनुभूत शृङ्गारिक भावों और परिस्थितियोंका चित्रण करता है और फलतः अधिक मर्मस्पर्शी बन पड़ा है।

नैतिक दृष्टिसे अन्य अनेक काव्यों और नाटकोंकी अपेक्षा अमरुशतक उच्च धरातलपर स्थित है। उसमें विधिपूर्वक विवाहित स्त्री और पुरुषके प्रेम जीवनका चित्रण है। प्राचीन परम्पराके अनुसार पुरुषकी एकाधिक पत्नियाँ हो सकती हैं और हो सकता है कि वह उनमेंसे प्रत्येकके प्रति पूर्णतः निष्ठावान् न हो, किन्तु सारे काव्यमें कहीं भी कोई स्त्री अपने पतिके अतिरिक्त किसी अन्य पुरुषसे प्रेम करती हुई अङ्कित नहीं की गयी; उसके लिए अपने पतिके प्रेमपगे स्पर्शसे बड़ी प्रसन्नता और उसके विरहसे अधिक दुःख नहीं नहीं हो सकता। प्रेमी-प्रेमिकाके बीच कलह दुर्लभ नहीं है, वस्तुतः बहुसङ्ख्यक श्लोकोंका यही विषय है; किन्तु वे बहुधा क्षणिक हैं और सरलतासे समाप्त हो जाते हैं। अमरुक की दृष्टिमें उन्मुक्त और मनचाहे प्रेमके लिए कोई स्थान नहीं है।

९. काव्यका क्षेत्र अत्यधिक सीमित होनेके कारण स्वभावतः उसमें तत्कालीन जीवनकी वह विविधता दृष्टिगोचर नहीं होती जो महाकाव्यों और नाटकोंमें। साथ ही कविका निश्चित देशकाल ज्ञात न होनेसे यह निर्णय करना भी कठिन है कि वह किस देशके किस भाग अथवा कालका चित्रण कर रहा है। किन्तु जैसा कि हम कह आये हैं अमरुक संभवतः कश्मीरका निवासी था और आठवीं शतीके मध्यके पूर्व किसी समय हुआ। अतः मोटे तौरपर हम कह सकते हैं कि अमरुशतकमें मध्यकालीन कश्मीरी जीवन चित्रित है। केवल प्रेम-जीवन काव्यका वर्ण्य विषय होनेके कारण विशेषतः स्त्रियोंकी वेश-भूषा, आभूषण, प्रसाधन और केश विन्यास जैसे विषयोंपर ही इधर-उधर बिखरे हुए उल्लेखोंसे प्रकाश पड़ता है। सम-सामयिक जीवनके अन्य पहलुओं-पर प्राप्त सामग्री अत्यल्प है।

१०. जैसा कि हमने ऊपर कहा है, अमरुक शैवमतका अनुयायी था और इसलिए स्वभावतः ही उसने काव्यके आरम्भमें भगवान् शिव (श्लो० २) और देवी अम्बिका (श्लो० १)की वन्दना की है। शिव द्वारा त्रिपुर (राक्षसोंके तीन नगर)के विनाश और त्रिपुरकी युवतियोंके शोकका उल्लेख किया गया है (श्लो० २)। हरिहर (विष्णु और शिवका मिश्रित रूप)[1] स्कन्द (श्लो० ३) और यम (श्लो० ६७)की भी चर्चा की गयी है। यमको दिन गिननेमें कुशल (दिवसगणनादक्ष) तथा निर्दय (व्यपेतघृण) कहा गया है। देवों द्वारा सागर मन्थनकी पौराणिक गाथाकी ओर श्लोक ३६में संकेत किया गया है। प्रेम जीवनका वर्णन करनेवाले काव्यमें कामका उल्लेख होना स्वाभाविक ही है। उसके लिए मन्थन (श्लो० ११५), मकरध्वज (श्लो० ११६) और मनोज (श्लो० १३७) शब्दोंका प्रयोग किया गया है और उसे तीन लोकोंका महान् धनुर्धर (त्रिभुवन महाधन्वी) कहा गया है (श्लो० ११५)।

तीर्थयात्राका इतिहास भारतमें अत्यन्त प्राचीन है। तीर्थोंमें मृतकको जलकी अञ्जलि (तोयाञ्जलि) देनेकी प्रथा लोकप्रिय थी (श्लो० १३२)।

---

१. हरि और हरका उल्लेख भी अभिप्रेत हो सकता है। टीकाकारोंका यही मत है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११. समाजके निर्धन वर्गकी ओर भी कुछ संकेत मिलते हैं। एक स्थानपर वर्षाऋतुमें टूटे-फूटे घरमें रहनेवाली एक दरिद्र गृहिणी (श्लो० ११८) का उल्लेख है तो दूसरी जगह वर्षाऋतुमें वायुके वेगसे ध्वस्त झोंपड़ीमें हुए छिद्रोंसे जलके प्रवेश (श्लो० १२६)का उल्लेख भी मिलता है।

धाय (धात्री, श्लो० १११) और गुरुजनों (श्लो० १६)का उल्लेख भी मिलता है।

१२. घी और मधु भोजनके महत्त्वपूर्ण अंग थे (श्लो० १०९)। एक स्थलपर कहा गया है कि खारे पानीसे प्यास दुगुनी हो जाती है (श्लो० १३०)।

मद्यपान सामान्यतः प्रचलित था। मद्य चषकमें किया जाता था। स्त्रियाँ भी सुरापान करनेमें नहीं हिचकती थीं (श्लो० १२०)। एक श्लोकमें मद्यपानसे मत्त स्त्रीकी चर्चा की गयी है (श्लो० ५५)।

१३. चीनी रेशम (चीनांशुक) भारतमें अत्यन्त प्राचीनकालसे बहुत लोकप्रिय था। इसका प्राचीनतम ज्ञात उल्लेख कौटिलीय अर्थशास्त्र (ई० पू० चतुर्थ शती)में प्राप्त होता है।[1] केवल इसी एक वस्त्रका उल्लेख अमरुशतकमें मिलता है जिससे पूर्व मध्यकालीन भारतमें विशेषतः स्त्रियोंमें, इसकी लोकप्रियता सूचित होती है (श्लो० ७७) स्त्रियोंका सामान्य वेष सम्भवतः दो वस्त्रों का था—अधोवस्त्र, जो वर्तमान धोतीकी तरह पहना जाता था, और उत्तरीय (श्लो० ७८, ११३) जो गुलुबन्दकी तरह कन्धोंपर डाल दिया जाता था। अधोवस्त्र कटि पर गांठ (नीवी, श्लो० १०१, नीवी बन्ध, श्लो० ११२) लगाकर बांधा जाता था।

सिले हुए कपड़े भी पहने जाते थे। कञ्चुक (श्लो० ११) अथवा कञ्चुलिका (श्लो० २७), जो आजकलकी चोलीकी तरह था, की चर्चा मिलती है। स्तनों के विस्तारके कारण कञ्चुकके विस्तारके टांकों (सन्धि)के टूटनेका उल्लेख है (श्लो० ११)। कञ्चुलिका गाँठ (वीटिका) बाँधकर पहनी जाती थी (श्लो० २७)। अर्जुनवर्मदेवके अनुसार यह दक्षिणी चोली थी, क्योंकि उसीको बाँधनेमें तनीका व्यवहार किया जाता था।[2] किन्तु यह ठीक प्रतीत नहीं होता क्योंकि उत्तर भारतमें भी तनी बाँधकर चोली पहनने की प्रथा प्रचलित रही हो तो कोई आश्चर्य नहीं। आजकल भी उत्तरी भारतमें यह ढंग दिखाई देता है।

कञ्चुक स्त्री वेशके रूपमें गुप्तकालके बाद ही भारतीय कलामें अंकित दिखाई देता है।[3]

---

१. अर्थशास्त्र (२-११-११४)। चीनपट्टके स्रोतके रूपमें चीन भूमिका उल्लेख कभी-कभी अर्थशास्त्रके परवर्ती होनेका प्रमाण माना जाता है। कुछ चीन विद्या विशारदोंके अनुसार समस्त देशके लिए चीन शब्दका प्रयोग सर्वप्रथम प्रथम त्सिन् अथवा चीन राजवंशके काल (ई० पू० २२१-२०९)में हुआ। इस कठिनाई-को दूर करनेके लिए स्व० डॉ० काशीप्रसाद जायसवालने भारतीय साहित्यमें उल्लिखित चीनोंकी पहचान गिलगितकी शीन नामक एक जनजातिसे करनेका सुझाव दिया था। द्रष्टव्य—हिन्दु पॉलिटी पृ० ११२, टिप्पणी १। डॉ० मोतीचन्द्र इसकी पहचान काफिरीस्तान, कोहिस्तान और दरद प्रदेशसे करते हैं जहाँ शीन बोली बोली जाती है। देखिये प्राचीन भारतीय वेशभूषा, पृ० १०१। किन्तु यह अधिक सम्भव है कि यह नाम उत्तर-पश्चिमी चीनके त्सिन् नामक राज्य, जो चुनचिन काल (ई० पू० ७२२-४८१) तथा युद्धरत राज्यके काल (ई० पू० ४८१-२२१)में विद्यमान था, से निकला। इसी राज्यके माध्यमसे भारत समेत पश्चिमी संसार और चीनके सम्बन्ध स्थापित हुए। द्रष्टव्य—एज ऑफ इम्पी-रियल यूनिटी, पृ० ६४४, भाण्डारक प्राच्य विद्या प्रतिष्ठानकी पत्रिका, खण्ड ४२ (१९६१), पृ० १५०-१५४; आर० पी० कांगले, दी कौटिलीय अर्थशास्त्र : ए स्टेडी, पृ० ७४-७५।

२. कञ्चुलिका चयं दाक्षिणात्य चोलिकारूपैव। तस्या एव ग्रन्थनपदार्थे वीटिकाव्यपदेशः।

३. वासुदेवशरण अग्रवाल, हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन, चित्र, २७।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कपड़े (सम्भवतः धोती)के पल्लू के लिए अंशुकपल्लव शब्दका व्यवहार किया गया है (श्लो० ८५)।

१४. स्त्रियों द्वारा शरीरके विभिन्न अंगों पर पहने जानेवाले अनेक आभूषणोंकी चर्चा प्रसंगवश अमरुशतकमें आयी है। कानोंमें कुण्डल पहने जाते थे (श्लो० ३) प्रतीत होता है कि कभी-कभी एक ही कानमें एकाधिक कुण्डल पहननेका रिवाज भी प्रचलित था (कुण्डल-स्तवक, श्लो० १०८)। श्लोक १६में कानोंमें पद्मराग मणि पहननेका उल्लेख है। बाँहोंमें बाजूबन्द (केयूर) पहनते थे (श्लो० ६०)। वक्ष पर मोतियोंका हार (तारहार, श्लो० ३१; गुप्ताहार, श्लो० १३८) पहना जाता था। हार कामाग्निका ईंधन कहा गया है (श्लो० १३०)। हाथोंमें वलय पहननेका रिवाज था। पैंतीसवें श्लोकमें प्रियतमके प्रवास पर जानेका निश्चय करनेपर प्रियतमके हाथसे दौर्बल्यके कारण बलयके ढीले हो जाने अथवा हाथसे वलयके गिर जानेका वर्णन बहुधा मिलता है और यह एक प्रकारका कवि समय बन गया था।[1]

कमरमें करधनी पहनी जाती थी, जिसके लिए मेखला (श्लो० १०१) और काञ्ची (श्लो० २१, ३१, १०९) शब्दोंका व्यवहार किया गया है। यह कटिको अलंकृत करनेके अतिरिक्त धोतीको बाँधने अथवा सम्हालनेके काम आती थी (श्लो० २१, १०१)। करधनीमें घुँघरू (मणि)भी बाँधे जाते थे, जिनसे कलकल ध्वनि होती थी (श्लो० ३१, १०९)। पैरोंमें नूपुर पहने जाते थे (श्लो० ७९, ११६, १२८)।[2] कभी-कभी नूपुरमें भी घुँघरू बाँध देते थे जिनसे पैर हिलने पर मधुर ध्वनि निकलती थी (श्लो० ३१)।

एक स्थलपर विशिखाका भी उल्लेख मिलता है (श्लो० १११)। जो कौटिल्यके अनुसार सुनारोंकी गलीके अर्थमें प्रयुक्त होता था। संदंशक अथवा संडसीका भी उल्लेख आता है जिसे सुनार अपने व्यवसायमें काममें लाते होंगे। श्लो० ५९में चन्द्रकान्त और वज्र (हीरा)का उल्लेख आया है। वज्र अपनी कठोरताके लिए प्रसिद्ध था और फलस्वरूप कठोर व्यक्तिके लिए वज्रमय शब्दका प्रयोग प्रचलित था।

फूल और पत्ते भी विभिन्न आभूषणोंके रूपमें पहने जाते थे। इस रिवाजका उल्लेख प्राचीन भारतीय साहित्यमें बहुधा मिलता है। अमरुकने फूलोंकी माला (श्लो० ९०) और कानोंमें मञ्जरी समेत पल्लवोंके कनफूल (कर्णपूर), जिसके चारों ओर लोभसे भौंरे चक्कर लगाया करते थे (श्लो० १) पहननेका उल्लेख किया है।

१५. केश विन्यासकी विभिन्न पद्धतियाँ प्राचीन भारतमें प्रचलित थीं। इनमेंसे अमरुशतकमें धम्मिल्ल (श्लो० ९८, १२१) और अलकावलि (श्लो० १२३)की चर्चा की है। धम्मिल्ल बालोंके जूड़ेको, जो फूलों और मोतियों इत्यादिसे सजाया जाता था, कहते थे।[3] यह प्रायः सिरके ऊपरी भागमें बाँधा जाता था। इसका उल्लेख भारतीय साहित्यमें बहुधा आता है।[4] कलामें भी इसका चित्रण प्रायः मिलता है।[5] अमरुकने धम्मिल्लके मल्लिका पुष्पोंसे सजानेका उल्लेख किया है (श्लो० १२१)।

---

१. द्रष्टव्य-मेघदूत, १०२; अभिज्ञानशाकुन्तल, ३-१०; कुट्टनीमत, २९५।

२. कोक सम्भवने ८७वें श्लोककी टीकामें नूपुरोंको पुरुषोंके लिए अनुचित कहा है।

३. तुलनीय, धम्मिल्लः संयताः कचाः, अमरकोश, २०६-९७।

४. द्रष्टव्य—भर्तृहरिका शृङ्गारशतक, श्लो० ४९; गीतगोविन्द, २; चौरपञ्चविंशिका, ७९। डॉ० वासुदेवशरण अग्रवालके अनुसार धम्मिल्ल सम्भवतः द्रविड़ था द्रमिड़ या दमिल शब्द से निकला है। द्रष्टव्य—हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ९६।

५. पन्त प्रतिनिधि, अजन्ता, फलक ७९; एन्शिएण्ट इण्डिया, संख्या ४, फलक ४४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अलकावलिमें, जैसा कि नामसे ही स्पष्ट है, बाल इस प्रकारसे सजाये जाते थे कि उनकी घुँघराली लटें माथे पर आती थीं। इस प्रकारका केशविन्यास अहिच्छत्राकी मृण्मूर्तियोंमें सुन्दर रूपमें अंकित है।[1] इस सन्दर्भमें अहिच्छत्राके शिव मन्दिर (ई० ४५० और ६५० के बीच)में प्राप्त पार्वतीके अत्यन्त कलापूर्ण सिरका उल्लेख करना चाहिए, जिसमें धम्मिल्ल व अलकावली दोनोंका अंकन एक साथ मिलता है।[2]

केशोंको सजानेका दूसरा प्रकार भी था—कबरी या चोटी बाँधना। यह भी फूलोंसे सजायी जाती थी (श्लो० १२४)। विरहमें लम्बी बिखरी लटें रखनेका रिवाज था (श्लो० ८८)।

१६. प्राचीन भारतमें स्त्रियोंको प्रसाधनमें आजसे अधिक रुचि थी। यदि यह कहा जाय कि यह उनके जीवनका एक अनिवार्य अंग था तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। अमरुशतकमें स्त्रियोंके प्रसाधनोंकी चर्चा स्वभावतः अनेक स्थलों पर आती है। शरीरपर विविध प्रकारके सुगन्धित पदार्थोंका लेप किया जाता था। इनमें चन्दन (श्लो० ७३, १२४, १०५, १३५) कुङ्कुम (श्लो० ११३, ११९) और अगुरु (श्लो० १०७) का उल्लेख अमरुकने किया है। इन लेपोंके लिए पङ्क (श्लो० १०७) और अङ्गण (श्लो० १७) तथा विलेपन (श्लो० २६) शब्दोंका प्रयोग किया गया है। स्तनों पर अङ्गराग लगानेकी चर्चा प्रायः मिलती है।

पान या ताम्बूल खानेकी प्रथा भारत में अत्यन्त प्राचीन कालसे प्रचलित थी और स्वास्थ्य सम्बन्धी कारणोंके अतिरिक्त इसका एक प्रमुख उद्देश्य था—अधरोंमें आकर्षक लाली पैदा करना (श्लो० १८, ६०, १०७, १२४)। आँखोंमें काजल (कज्जल, श्लो० ६०) अथवा आञ्जन (अञ्जन, श्लो० १०५, १२४) लगानेकी प्रथा थी। अधरोंमें लाली लगायी जाती थी (श्लो० १०५)। गालों पर विविध प्रकारकी फूल पत्तोंकी आकृतियाँ सुगन्धित पदार्थोंसे अंकित की जाती थीं। उनके लिए विशेषक (श्लो० ३) और पत्रावली (श्लो० ८१) शब्दोंका उपयोग किया गया है। पैरोंमें आलता (अलक्तक, श्लो० १०७, ११६, १२८, लाक्षा, श्लो० ६०) लगाया जाता था।

धारायन्त्र अथवा फौवारेसे स्नान करनेका उल्लेख श्लो० १२५में आया है।

१७. मनोरञ्जनके साधनोंका उल्लेख अमरुशतकमें नहींके बराबर है। केवल घरमें तोता पालनेके रिवाज की चर्चा आयी है। गृहशुककी वाणीके अनुकरणमें प्रवीणताका उल्लेख कई श्लोकोंमें किया गया है (श्लो० ७, १६, ११७)। उसे अनार खानेका शौक था।

स्त्रियाँ कमलसे प्रायः खेलती थीं (लीलातामरस, श्लो० ६०)। स्त्रियों द्वारा अपने प्रियतमोंको लीला कमलसे मारनेका उल्लेख है (श्लो० ७२)।

१८. घरोंको बन्दनवार (बन्दनमालिका)से सजानेकी प्रथा थी। विशेषतः किसी प्रिय व्यक्तिके आगमन पर मङ्गलके रूपमें बन्दनवार सजायी जाती थी। इसके लिए कमल भी काम में लाया जाता था (श्लो० ४५)।

१९. घरेलू उपयोगकी वस्तुओंमें पलंग (तल्प, श्लो० १०१), आसन (श्लो० १८-१९) बिछानेकी चादर (प्रच्छदपट, श्लो० १०७), प्रदीप (श्लो० ७७, ९१), कलश (श्लो० ११९), कुम्भ (श्लो० ४५,)

१. पूर्वोक्त, मृण्मूर्ति क्रमांक १७०, २६७, २७४, २७५।
२. पूर्वोक्त, फलक, ४५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१३७), और ईन्धन (श्लो० १३४)का उल्लेख मिलता है। श्लो० १३७में सोनेके घड़े (शातकुम्भ कुम्भ)की चर्चा है।

२०. कुछ तत्कालीन शिष्टाचारोंका भी उल्लेख मिलता है। जब कोई प्रिय यात्रापर रवाना होता था तो पुण्याह किया जाता और यात्राके सकुशल सम्पन्न होनेके लिए मंगलकामना की जाती थी (श्लो० ६१)। प्रिय अतिथिके स्वागतके लिए बन्दनवार सजायी जाती, फूलोंका गुच्छा भेंट किया जाता और घड़ेसे पानीका अर्घ दिया जाता था (श्लो० ४५)। प्रार्थना अथवा याचना करते समय अञ्जलि बाँधनेका रिवाज था (श्लो० ८५)। दान देते समय अञ्जलिसे जल देनेकी प्रथा बहुत प्राचीन कालसे प्रचलित थी और प्राचीन ताम्रपत्र लेखोंमें इसका बहुधा उल्लेख मिलता है। जलाञ्जलि देना किसी वस्तुके स्वामित्वके पात्रका सूचक था (श्लो० ५४)।

२१. एक स्थलपर डौंढ़ी (डिण्डिम) पीटनेका उल्लेख मिलता है। यह आहत प्रकारका वाद्य था (श्लो० ३१)। श्लोक ५१-५२ में चित्रकलाके मूल सिद्धान्तका उल्लेख किया गया है। रेखान्यास चित्रकला-का मूल है।

२२. प्राचीन साहित्यके बारेमें अमरु शतकमें केवल एक ही उल्लेख आया है। १२वें श्लोकमें धनञ्जय (अर्जुन)को गाय लौटानेमें समर्थ कहा गया है। यह निश्चय ही महाभारतमें आयी हुई पाण्डवों द्वारा विराटकी गायोंकी रक्षा करनेकी कथाका संकेत है।

२३ पहले श्लोकमें खटकामुख नामक मुद्राका उल्लेख आया है। इस मुद्राका वर्णन भरतके नाटच-शास्त्रमें प्राप्त होता है।[1]

२४, तत्कालीन राजनीतिक विचारों और संघटनके विषयमें अमरु शतकसे कोई जानकारी नहीं मिलती। केवल कुछ प्रहरणों, जैसे धनुष (चाप, श्लो० १३५), बाण (शर श्लो० २), धनुषकी प्रत्यञ्चा (ज्या, श्लो० १) और ब्रह्मास्त्र (श्लो० ५२)का उल्लेख प्राप्त होता है। एक स्थानपर स्कन्धावारकी भी चर्चा की गयी है (श्लो० ११५)। श्लो० १३७में वेदि पर आसीन राजाके सोनेके घड़ोंसे अभिषेक किये जानेका उल्लेख है। वेदिके दोनों ओर केलेके दण्ड लगाये जाते थे।

२५. वासगृह अथवा शयनकक्ष (श्लो० ८२) घरका एक अनिवार्य अंग था। घरके आँगनमें बगीचा (अंगण-वाटिका) लगाया जाता था। उसमें लगाये जानेवाले वृक्षोंमें आम जैसे बड़े वृक्षका भी समावेश था (श्लो० ७८)।

२६. प्रसंगवश निम्ननिर्दिष्ट पशु-पक्षियोंकी भी चर्चा आई है—गाय (श्लो० ३२), हिरण (मृग, श्लो० ६०; सारङ्ग श्लो० ७३; हरिण श्लो० १३८), मोर (शिखी, श्लो० ११८), खंजरीट (श्लो० १३५), तोता, भौंरा (भ्रमर, श्लो० १, अलि, श्लो० ९६) और भौंरी (भृंगांगना, श्लो० ७८)। स्त्रियोंके नेत्रोंकी हिरणकी आँखोंसे तुलना एक प्रकारका कवि समय बन गया था। फलस्वरूप उनके लिए मृगदृक्ष, हरिणाक्षी और सारंगाक्षी जैसे शब्दोंका प्रयोग होता था। वर्षा ऋतुमें मोरोंके पंख ऊँचे कर बादलोंसे गिरती बूँदोंको देखनेका वर्णन है। भौंरों-भौंरियोंके फूल-पत्तियोंके आसपास मँडराने और गुंजारनेका उल्लेख है।

२७. वृक्ष-वनस्पतियोंमें सबसे अधिक उल्लेख कमलके हैं। उसके लिए उत्पल (श्लो० २,२९),

---

१. नाटचशास्त्र।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तामरस (श्लो० ६०,७२), नलिन (श्लो० ११७), राजीव (श्लो० १२३), शतदल (श्लो० ११७) और पंकज (श्लो० १३२) शब्दोंका प्रयोग आया है। कमलकी डण्डीके लिए नलिनीनाल (श्लो० १०४) और उसके पत्तोंके लिए नलिनीदल (श्लो० १३४) शब्द व्यवहृत हुए हैं। नीलकमल (इन्दीवर)के बन्दनवार सजानेकी चर्चा श्लोक ४५ में आई है। मल्लिका ग्रीष्म-ऋतुमें फूलती (श्लो० ३१) और उसके फूल केशपाश शजानेमें काम आते थे (श्लो० १२१)। प्रसंगवश कुन्द, जाति (श्लो० ४५), आमकी मंजरी (श्लो० ७८) अनारके फल (श्लो० १६), कल्हार, सप्तच्छद (श्लो० १२२), कन्दल (श्लो० १२६) और केले (कदल)के काण्ड (श्लो० १३७) का उल्लेख हुआ है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org